IJAER/Jan-Feb 2022/Volume-11/Issue-1 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

सूरदास एवं मीराबाई की भक्ति का तुलनात्मक विश्लेषण

दीपवाली देवी

शोधार्थी

पीएच.डी (हिंदी)

श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला

विश्वविद्यालय ,झुन्झुनू–राजस्थान।

डॉ. सुरेश कड़वासरा

शोध निर्देशक

हिंदी विभाग

श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला

विश्वविद्यालय ,झुन्झुनू–राजस्थान।

शोध सारांश

भारत की पवित्र धरती धन्य है जहाँ पूरे ब्रह्मांड के नायक, जगत को चलाने वाले भगवान समय–समय पर स्वयं अवतरित होते हैं। उन्हीं की इच्छानुसार उनके भक्तजन इस पृथ्वी पर प्राणियों को सचेत तथा सावधान करने के लिए आते रहते हैं। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणाम स्वरूप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ था और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे–धीरे लोक प्रचलित भाषाएँ भक्ति–भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गई और कालान्तर में भक्ति विषयक साहित्य की लहर सी आ गई। यह भावना वैष्णव धर्म तक ही सीमित न थी, शैव, शाक्त आदि धर्मों के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय तक इस प्रवाह से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। भक्ति काल जहाँ उच्चतम धर्म की व्याख्या करता है वहाँ उसमें उच्चकोटि के काव्य के भी दर्शन होते हैं। इसकी आत्मा भक्ति है, जीवन–स्रोत रस है और शरीर मानवी है। इसी स्वर्णिम युग में दैवीय वरदान के रूप में मीरा का जन्म हुआ। सूरदास एवं मीराबाई सुविख्यात सगुणोपासक थे। उन्होंने कृष्ण को अपने प्रेम का देवता मानकर उनकी साधना में अपने को मिटा दिया था। कृष्ण–प्रेम के आगे मीरा को कुछ भी दिखाई नहीं देता था। 2 उन्होंने अपने कृष्ण के लिए अपना सब कुछ छोड़ दिया था। राज–सुख, धन–दौलत, सुख–सुविधा, भोग–विलास, संसार के जितने भौतिक सुख थे वे सुख मीरा के लिए कुछ नहीं थे। उनके लिए संसार में कुछ भी अगर शेष बचा था वह तो कुल कृष्ण–प्रेम था। मीरा दिन–रात कृष्ण के प्रेम में बावली बनकर घूमा करती थी।

बीज शब्दः **लोकोन्मुखी प्रवृत्ति, वैष्णव धर्म, सम्प्रदाय, कालान्तर, सुविख्यात**

भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत देवताओं में श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरि है। वेदों में श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है, ऋग्वेद में कृष्ण (अंगीरस) का उल्लेख हुआ है। श्रीमद्भाग्वदपुराण में उन्हें पूर्ण ब्रह्मा के रूप में चित्रित किया गया है। भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार कृष्ण की जन्म एवं लीलाभूमि के रूप में व्यापक स्तर पर हुआ है। वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में वल्लभाचार्य–प्रष्टिमार्ग, निम्बाकाचार्य–निम्बार्क, श्रीहितहरिवंश–राधावल्लभ, स्वामी हरिदास–हरिदासी आदि सभी सम्प्रदायों में पूर्ण ब्रह्मा श्री कृष्ण तथा श्री राधा उनकी आहादिनी शक्ति की उपासना की गई। 2 सत, चित्त, आनंद स्वरूप श्रीकृष्ण अपनी बाल–क्रिड़ाओं के माध्यम से समस्त गोकुलवासियों को आनंद प्रदान करते हैं। बाल रूप में उनके दिव्य रूप को दिखाया गया है। वे सर्वव्यापक, अविनाशी, अजर, अमर, अगम आदि विशेषणों से युक्त होते हुए भी ब्रज के प्रत्येक प्राणी को उसके भावानुरूप आनंद प्रदान करते हुए दिखाई देते हैं। कृष्ण सौन्दर्य के सागर हैं। क्या सागर को कोई तैर कर पार कर सकता है ? वह सौन्दर्य अनंत और अपार है, लोकातीत है, बुद्धि और विवेक उसके सम्मुख तुच्छ हैं :

तनु अति स्याम अगाध अबुं–निधि, कटि पट गीत तरंग

चित्तवत चलत अधिक रुचि उपजत, भंवर परति सब अंग।। 3

आध्यात्मिक चिंतन मानव प्रकृति का नैसर्गिक लक्षण है। भारतीय धरा की पहचान भी आध्यात्मिक पुरोधा के रूप में रही है। किसी भी देश, समाज अथवा क्षेत्र में व्यक्ति की समाज एवं वातावरण के प्रति अजस्र प्रतिक्रिया होती रहती है। यह प्रक्रिया 2 प्रकार से होती है– बाह्य और आंतरिक। ये विशेष व्यक्ति अपने दार्शनिक चिंतन का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करते हैं। यह दर्शन युक्तिपूर्वक होने के कारण चिंतनशील व्यक्तियों के ऊपर अपना प्रभाव छोड़ता है जो बाद में उपदेशों, शिक्षा, धर्मगुरूओं द्वारा समाज में प्रचारित होता है जो किसी भी समाज में रीति, परंपरा व मान्यताओं में तबदील हो जाता है। समयानुसार दर्शन चिंतन परिपक्व रूप धारण कर आध्यात्मिक शक्ति में तबदील हो जाता है। यह दार्शनिक चिंतन, धार्मिक, नैतिक एवं सौंदर्य संबंधी विश्वास में रूपांतरित हो जाता है। भारतवर्ष में आध्यात्मिक शक्ति प्रमुख रूप से तीन वर्गों में भास्वरित हुई–वैदिक भारत, बौद्ध भारत और मुस्लिम भारत। वैदिक भारत में अध्यात्म का आकार निराकार भी रहा है व साकार भी तथा परम तत्व पर भी आधारित रहा है। सतचित् आनंदमय ब्रह्म साकार है और निराकर भी, सगुण भी है व निर्गुण भी, सावधि है निरवधि भी, बाह्य और आंतरिक भी है। वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि और न जाने उन पर कितने भाष्य उसके विवेचन में लिखे गए। नेति–नेति कहकर ऋषियों–मनीषियों की वाणी जिसका गुणानुवादन करके थकी नहीं। मूकास्वादनवत् कहकर जिस आनंदानुभूति का वर्णन कोई का नहीं पाया। मां शारदा भी जिसका वर्णन करने में स्वयं को अक्षम मान बैठी। ऐसे ही ईश्वरीय स्वरूप वर्णन श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में अनेक ज्ञान मंथन आवांतर गति से होते रहे हैं जो मुक्ति के मार्ग का अन्वेशण करते हैं। आत्मा व परमात्मा का मिलन योग की उत्पत्ति का कारक है।

बचपन में ही गिरधर लाल के प्रेम में डूब कर टूटी–फूटी कविताएँ भी रचने लगी थीं। उस स्वप्न के बारे में मीरा अपनी माता से कहती हैं जो निम्नलिखित है–

मीरा– ''माई म्हनि सुपने में परण गयो जगदीश।

सोती को सुपना अबियो जी सुपना विस्वा बीस।।

माँ– गैली दीखे मीरा बावली, सुपना आल जंजाल।

मीरा–

माई म्हाँने सुपने में परण गया गोपाल।

अंग–अंग हल्दी में करी जी, सुध्यो भीजो गात।

माई म्हाँने सुपने में परण गयो दीनानाथ।।

छप्पन कोट जहाँ जन पधारे, दूल्हा श्री भगवान।

सुपने में तोरण बाँधियों जी, सुपने में आई जान।।

मीरा को गिरधर मिला जी, पूर्व जन्म का भाग।

सुपने में म्हाँरे परण गया जी, हो गया अचल सुहाग।'' 4

योगी को ज्ञान की प्राप्ति होकर जो उसका अज्ञान से वियोग होता है, वही मुक्ति है। ब्रह्म के साथ एकता एवं प्राकृत गुणों से पृथक् होना है, मुक्ति होती है योग से। जो अध्यात्म को पूर्णता प्रदान करती है। वैदिक धर्मग्रंथों का इतना विशाल और समृद्ध भंडार है कि भारतीय सांस्कृतिक जीवन की प्रत्येक गतिविधि पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतभूमि में सभी धर्म एवं संप्रदायों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से वैदिक चिंतन से संबंध रहा है। वैदिक साहित्य को संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। संहिताओं में अधिकतर वैदिक देवताओं की स्तुतियां संगृहित है, जबकि ब्राह्मणों में कर्मकांड व आरण्यकों में उपासना पद्धति के दिग्दर्शन होते हैं। उपनिषदों के ब्रह्म को समान इंद्रियातीत, अगम्य, अगोचर व अनिर्वचनीय तत्वरूप माना है। श्रुति

ग्रंथों के परिशीलन से स्पष्ट जान पड़ता है कि ब्रह्म की मान्यता दो स्वरूपों में है। प्रथम निर्गुण, निर्विशेष, निराकार और निरूपाधि एवं दूसरे इन सब बातां से मुक्त अर्थात् सगुण, सविशेष, साकार और सोपाधि। साधारणतः यह बात आश्चर्य करने वाली है कि–वह ब्रह्म स्वयंमेव में निराकार, निर्गुण, निर्विशेष और निरूपाधि है, किंतु गलतफहमी के कारण जिसे हम माया भी कह सकते हैं, उसमें उपाधियों या सीमाओं का आरोप करते हैं। मीरा का काव्य वैयक्ति अनुभूतियों का हैं। उस पर दर्शन, रहस्पवाद आदि की दुर्बोधता का आक्रमण नहीं हुआ है। वे एक अद्भुत संसार काजीव बनाकर अद्भुत चमत्कारों का अनुभव करने वाली थी। परिणाम स्वरूप उनकी कविता में अनुभूतियों का अदभुत चमत्कार दृष्टिगोचर हुआ है। अलंकार, भाषा आदि के चमत्कार से उसे कृत्रिम सौन्दर्य देने का प्रयास भी नहीं हुआ है। मीरा के भाव उनकी तन्नीन हृदय स्थल से स्वतः प्रसूत थे। अतः वे हृदय के सच्चे उद्गार है। मानव हृदय को छूने की शक्ति उन में निहित है। यह सबसे बड़ी विशेषता है कि मीरा काव्य का भावक्षेत्र प्रेमाधृत है। मीरा प्रेमदीवानी थी। उनका प्रेम लौकिक सीमाओं का स्पर्श करते हुए आध्यात्मिकता से आच्छादित हो जाता है। अतः मीरा के पदों पर विचार करते समय हम उससे भावपक्ष पर ज्यादा आकृष्ट हो जाते हैं। यह उनके काव्य की आत्मा को पहचानने में सहायक होता है। मीरा का कृष्ण विषयक दाम्पत्य सम्बन्ध अलौकिक भगवद्–रति पर आधारित है। इसके आलम्बन है भगवान् कृष्ण।

राणा को सम्बोधित करना मीरा की कविता को अमूर्तय से बचाता है और संवाद को एक शक्ति केन्द्र के साथ होने वाली सांस्कृतिक मुठभेड़ में बदल देता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

गहना गाँठी राणा, हम सब त्याग्या, त्याग्या कररो चूडो

काजल टीको हम सब त्याग्या, त्याग्या बाँधन जूडो

मेवा मिसरी म्हैं सब त्याग्या, त्याग्य है शक्कर बूरो

तन की आस कबहूँ नहीं कीनी, ज्यों रण माही सूरो।। 5

मीराँ एक ऐसी स्वाभिमानी, साहस सम्पन्न और क्रान्तिकारी महिला थी जिन्होंने मध्ययुगीन रुढिवादी समाज–व्यवस्था, संकुचित चिन्तन तथा नारी को बन्धन में रखने वाली मानसिकता एवं सामाजिक नियमों के विरुद्ध जीवनभर संघर्ष किया। मीराँ के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है – 'जहाँ मीराँ के व्यक्तित्व की बात है उनमें हम अद्भुत साहस, अद्भुत धैर्य एवं अद्भुत सहजता पाते हैं। वे अपने लक्ष्य के प्रति इतनी अधिक आस्थावान एवं दृढ है कि विषपान तक की स्थिति उन्हें विचलित नहीं कर पाती। पारिवारिक विरोध, सामाजिक भर्त्सना एवं लोकनिन्दा भी उनके तेजस्वी व्यक्तित्व को तनिक भी छू नहीं पाती। यही कारण है कि वे अपनी आत्मा की आवाज को, अपने हृदय की धडकन को, अपने मन के उल्लास को अपनी भावनाओं के आवेग को और अपनी अनुभूतियों के प्रवाह को निर्बाध रूप में व्यक्त कर पाई।

काम, प्रेम और भक्ति के विस्तृत विवेचन के पश्चात और यह सिद्ध करने के बाद कि प्रेम ही सब भक्ति भावों का मूल है, हमने परमविरहासक्ति को कवि की लालित्य–चेतना को केन्द्रीय भाव स्वीकार कर लिया है, पुष्टि सम्प्रदाय में संयोग–विप्रयोगात्मक रसिकेश्वर श्रीकृष्ण ही आराध्य हैं। भक्ति का शुद्ध रूप वियोगावस्था में ही निखरता है। इसलिए सच्चे भक्त सूर का वियोग–वर्णन उच्चकोटि का बन पड़ा है। पुष्टि संप्रदाय में विरह को आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। यही कारण है कि इस संप्रदाय के इस प्रमुख प्रवक्ता ने इस भाव को एक चरम सुन्दर काव्य भ्रमर–गीत के रूप में प्रस्तुत किया है। आलंकारिकों के मत में भी पूर्ण रस की निष्पति विप्रलंभ श्रृंगार में देखने को मिलती है। द्विवेदीजी का निष्कर्ष यह है कि इस वियोग की विराट धारा का स्त्रोत वियुक्त प्रेमी के प्रति एकदम उदासीन है। वैष्णव कवियों ने इस सत्य की उपलब्धि की है। श्रीकृष्ण की लीला में, श्रीकृष्ण परिपूर्ण हैं, अनन्त हैं, उदासीन हैं। यशोदा और राधिका इस अनन्त वियोग रूपी दीर्घवृत्त के दो नाभिकेन्द्र हैं।योग की शब्दावली में ब्रम्हरन्ध्र अथवा सहस्रदलकमल को ही गगनमण्डल कहा है। इस गगनमण्डल में रहने

वाला निश्चय ही परब्रह्म है। मीराँ की वियोगिनी जीवात्मा की सूरत इसी परब्रह्म में लगी है। इसी गगनमण्डल में अपने पियाजी के पलंग का वर्णन करती हुई मीराँ कहती है –

सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।

गगन मँडल पे सेज पिया की, किस विध मिलणा होय। 6

'लोक–लाज', 'कुल की कानि' और जाने कितनी मर्यादाओं का नाम दे देकर नारी स्वातन्त्र पर शक्तिशाली बेडियाँ डाली गई, उन्हें मीराँ ने सरल आत्मविश्वास से काटकर फेंक दिया।

माई सांवरे रंग राची।

तज सिंगार बाँध पग घुँघरू,

लोक लाज तज नाची। 7

होली का रूप प्रतीकात्मक होते हुए भी सूरदास की अद्‌भुत रंग योजना आन्तिरक उल्लास और प्रौढ़ निस्संग भाव का सूचक है। यह ब्रह्ममय होली है :–

अविगत आदि, अनंत अनुपम अलख पुरुष अविनाशी।

पूरण ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी।।

जहां वृन्दावन आदि अज रे, जहां कुंज लता विस्तार।

तहां बिहरत प्रिया प्रीतम दोऊ, निगम भृंग गुजार।।

रतन जटित कालिंदी की तट, अति पुनीत जहा नीर।

सारस–हंस–चकोर – मोर खग गूंतज कोकिल कीर।।

जहां गोवर्धन परबत मनि मैं, सघन कदरा सार।

गोपिन महल मध्य विराजत, निसि दिन करत बिहार।। 8

उनकी उत्कट लालसा है कि वे दीन–वत्सल हरि चरणों की शरण पा जाएं और उनके अधिक से अधिक निकट हो जाएं। प्रभु के साथ अपना आत्मीयतापूर्ण सेवक–सेव्य का सम्बन्ध जोड़ते हुए वे कहते हैं –

जो हम भले बुरे तो तेरे

तुम्हें हमारी लाज बड़ाई, बिनती सुन प्रभु मेरे।

सब तजि तुम सरनागत आयो दृढ़ करि चरन गहेरे।

तुम प्रताप बल बदत न काहूं, निडर भए घर चेरे।

और देव सब रक भिखारी त्यागै बहुत अनेके।

सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा ते पाए सुख न घनेरे।। 9

सूरदास के समस्त रचना–कौशल को इसी परिप्रेक्ष्य में देखने की योजना तीसरे अध्याय में हुई है। दूसरे अध्याय में प्रामाणिकता के प्रश्न को उठाया गया है कि सूरदास का कितना साहित्य प्रामाणिक है। जीवनी और जन्मांधता

संबंधी अनेक विवादों का स्पष्टीकरण इस संबंध में नितान्त अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया गया है। उपमा योग्य सभी द्रव्यों को जहां कलाकार ने एकत्र करना चाहा है वह दशम स्कन्ध है। कथासूत्र को जोड़ने वाले पदों की आवश्यकता इस दृष्टि से बिल्कुल नहीं पड़ती, बल्कि इस दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध को हमने लालित्य का नाभि–केन्द्र माना है। सम्पूर्ण वृहत्काय सूरसागर में कथा–निर्वाह के लिए अनेक प्रकार के जलों का प्रवेश हो गया है, किन्तु कलाकार का चैतन्य, सिसृक्षा, हृदयगत लालित्य और आत्मा का छंद जिन पदों में उतरा है – वे लीलागान के ही हैं। इन पदों का श्रेष्ठ जलखण्ड दशम स्कन्ध का पूर्वार्द्ध ही है। इस बात को सिद्ध करते हुए अनेक सौन्दर्यशास्त्रीय सूत्रों को आधार बनाया गया है। सूर–साहित्य के सामान्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत उन तथाकथित पच्चीस ग्रन्थों की प्रामाणिकता का प्रश्न पहले उठाया गया है। निष्कर्ष यही निकलता है कि राधा जैसा चरित्र सूरदास ने दिया है वह भागवत या कहीं भी नहीं मिलता, यह कवि की अपनी उपज है मौलिक और ललित।सभी देवी देवता अब उसे सामान्य, रंक और भिखारी ही प्रतीत होता है। इसके साथ ही उसे अपने स्वामी का जूठा भोजन खाने में भी अत्यन्त सुख मिलता है –

हमें नन्द मोल लिए।

जम के फंद काटि मुकराये अभय अनादि दिये।

मूडयो मूंड, कण्ठ बनमाला मुद्रा चक्र दिये।

सब कोऊ कहत गुलाम स्याम को सुनत सिरात हिये।

सूरदास को और बड़ो सूख जूठनि खाई जिये। 10

मीरा अपने जन समाज से जुड़ाव और प्रेम को निम्न पद में व्यक्त करती है–

रमईया मेरे तोही सूँ लागी नेह।

लगी प्रीत जिन तौड़ी रे बाला, अधिक कीजै नेह।। टेक।।

जो हूँ ऐसो जानती रे बाला, प्रीति कीयाँ दुष होय।

नगर ढंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय।

षीर न षाजे आरी रे, मूरष न कीजै मिंत।

षिण ताता षिण सीतला रे, षिण वैरी षिण मित।

प्रीत निभावण दल के षंभण, ते कोई बिरला सूर। 11

निष्कर्ष

सूर एवं मीरा कविता में प्रेम का ही नहीं, 'दरद' का भी उत्सव मानती है। मीरा की कविता 'दरद' की कविता है। दरद में प्रेम की सार्थकता है। समाज के दो भिन्न प्रकृति के भावों–दर्द और प्रेम–का सांमजस्य कर लोकधर्म का निर्वाह करती हैं। पीड़ा में ही राम रतन धन पाने की की अभिलाषा जताती है। मीरा की पीडा ही मीरा को विकल्प की खोज हेतू आशान्वित करती है। उसकी लोंक संबंधी भावना एक जन की भावना है और लोक की परिकल्पना में शोषण एवं वर्चस्वहीन समाज की भावना कल्पित है। मीरा की सृजना में मध्यकालीन समाज के दो लोक

स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। एक लोक वह हैं, जिसका मीरा विरोध करती है, जो सामंती मानसिकता से युक्त है और जो वर्चस्वी एवं शास्त्रीय परंपराओं को ही सर्वोपरि नहीं मानता अपितु व्यक्ति की भावनाओं, आकांक्षाओं के साथ लोकमानस भी जहाँ उपेक्षित था। उस समय का दूसरा लोक वह था, जिसके साथ मीरा संबद्ध होना चाहती है और अंततः होती हैं। लेकिन मीरा का तथाकथित प्रथम पुरूष समाज उसे द्वितीय जन समाज मे जीवननिर्वाह करने पर यातना और बंधनों की बेडियों में आबद्ध करता हैं। मीरा की जनसंबद्धता ही मीरा की लोकधर्मिता है। यह मीरा की जनसंबद्धता ही है जो आज तक मीरा की कविता लोकमानस मे करूण प्रेम की लोकगाथा के रूप में उपस्थित हैं। सूर ने भगवान का महात्म्य, दयालुता और भक्त वत्सलता, पतित पावनता का चित्रण बहुत ही भाव विह्वल होकर किया है। विनय के एक के बाद दूसरे पद में सूरदास अपनी क्षुद्रता की अभिव्यंजना करते हुए हरि से अमित करुणा की याचना करते हैं। उनकी उत्कट लालसा है कि वे दीन–वत्सल हरि चरणों की शरण पा जाएं और उनके अधिक से अधिक निकट हो जाएं।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ0 लाल बहादुर सिंह चौहान– भक्तिमती मीराबाई : जीवन और काव्य, पृ0 11
2. अरूण चतुर्वेदी : मीरा एक मूल्यांकन, पृ0 214
3. डॉ. गोविन्दराम शर्मा : सूर की काव्य साधना, पृष्ठ 86
4. डॉ. गोविन्दराम शर्मा : सूर की काव्य साधना, पृष्ठ 58
5. डॉ. हरवंश लाल शर्मा : सूर समीक्षा, पृष्ठ 48
6. डॉ. हरवंश लाल शर्मा : सूर समीक्षा, पृष्ठ 98
7. प्रभुदयाल मीतल : सूर निर्णय, पृष्ठ 17
8. डॉ0 लाल बहादुर सिंह चौहान– भक्तिमती मीराबाई : जीवन और काव्य, पृ0 55
9. डॉ0 लाल बहादुर सिंह चौहान– भक्तिमती मीराबाई : जीवन और काव्य, पृ0 186
10. अरूण चतुर्वेदी : मीरा एक मूल्यांकन, पृ0 214
11. अरूण चतुर्वेदी : मीरा एक मूल्यांकन, पृ0 216